नन्दिसूत्रके प्रणेता तथा चूर्णिकार*

नन्दीसूत्रके प्रणेता

नन्दीसूत्रकारने नन्दीसूत्रमें कहीं भी अपने नामका निर्देश नहीं किया है, किंतु चूर्णिकार श्री जिनदासगणि महत्तरने अपनी चूर्णिमें सूत्रकारका नाम निर्दिष्ट किया है, जो इस प्रकार है —

"एवं कतमंगलोवयारो थेरावलिकमे य दंसिए अरिहेसु य दंसितेसु दूसगणिसीसो देववायगो साहुजणहितट्ठाए इणमाह" [पत्र १३]

इस उल्लेख द्वारा चूर्णिकारने नन्दीसूत्रप्रणेता स्थविर श्री देववाचक हैं — ऐसा बतलाया है। आचार्य श्री हरिभद्रसूरि एवं आचार्य श्री मलयगिरिसूरिने भी इसी आशयका उल्लेख अपनी अपनी टीकामें किया है, किन्तु इनका मूल आधार चूर्णिकारका उल्लेख ही है। चूर्णिकारके उल्लेखसे ही ज्ञात होता है कि — नन्दीसूत्रके प्रणेता नन्दीसूत्रस्थविरावलिगत अंतिम स्थविर श्री दुष्यगणिके शिष्य श्री देववाचक हैं।

पंन्यासजी श्री कल्याणविजयजी महाराजने अपने 'वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना' निबन्धमें (नागरीप्रचारिणी भाग १० अंक ४) अनेकानेक प्रमाण और युक्ति द्वारा नन्दीसूत्रप्रणेता स्थविर देववाचक और जैन आगमोंकी माथुरी एवं वालभी वाचनाओंको संवादित करनेवाले श्रीदेवर्द्धिगणि क्षमाश्रमणको एक बतलाया है।

नव्यकर्मग्रंथकारआचार्य श्री देवेन्द्रसूरि महाराजने अपनी स्वोपज्ञ वृत्तिमें देवर्द्धिवाचक, देवर्द्धिक्षमाश्रमण नामके उल्लेखपूर्वक अनेकवार नन्दीसूत्रपाठके उद्धरण दिये हैं, ये भी उन्होंने

* श्रीदेववाचकरचितं नन्दीसूत्रम्–श्रीजिनदासगणिमहत्तरविरचितया चूर्ण्या संयुतम् (प्रकाशक–प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, ई. स. १९६६) के सम्पादनकी प्रस्तावनासे उद्धृत।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देववाचक और देवर्द्धिक्षमाश्रमणको एक व्यक्ति मानके ही दिये हैं। यह भी श्री कल्याणविजयजी महाराजकी मान्यताको पुष्ट करनेवाला सबूत है। तथापि नन्दीकी स्थविरावलीमें अंतिम स्थविर दुष्यगणि हैं, जिनको नन्दीचूर्णिकारने देववाचकके गुरु दर्शाये हैं। तब कल्पसूत्रकी वि. सं० १२४६ में लिखित प्रतिसे लेकर आज पर्यन्तकी प्राचीन-अर्वाचीन ताडपत्रीय एवं कागजकी प्रतियोंमें स्थविरावलिके पाठोंकी कमी-बेशीके कारण कोई एक स्थविरका नाम व्यवस्थित रूपसे पाया नहीं जाता है। इस कारण इन दोनों स्थविरोंको एक मानना कहाँ तक उचित है, यह तज्ज्ञ विद्वानोंके लिये विचारणीय है। देववाचक और देवर्द्धिक्षमाश्रमण इन नाम और विशेषण–उपाधिमें भी अंतर है। साथमें यह भी देखना जरूरी है कि नन्दीसूत्रकी स्थविरावलीमें वायगवंस, वायगपय, वायग, इस प्रकार वायग शब्दका ही प्रयोग मिलता है, दूसरे कोई वादी, क्षमाश्रमण, दिवाकर जैसे पदोंका प्रयोग नजर नहीं आता है। अगर देववाचकको क्षमाश्रमणकी भी उपाधि होती तो नन्दीचूर्णिकार जरूर लिखते ही। जैसे द्वादशारनयचक्रटीकाके प्रणेता सिंहवादी गणि क्षमाश्रमण, विशेषावश्यककी अपूर्ण स्वोपज्ञ टीकाको पूरी करनेवाले कोट्टार्यवादी गणि महत्तर, सन्मतितर्कके प्रणेता वादी सिद्धसेनगणी दिवाकर आदि नामोंके साथ दो विशेषण-उपाधियाँ जुडी हुई मिलती हैं इसी तरह देववाचकके लिये भी दो उपाधियोंका निर्देश जरूर मिलता। अतः देववाचक और देवर्द्धिक्षमाश्रमण, ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न, यह प्रश्न अब भी विचारणीय प्रतीत होता है। कल्पसूत्रकी स्थविरावली और नन्दीसूत्रकी स्थविरावलीका मेलझोल कैसे, कितना और कहाँ तक हो सकता है, यह भी विचारार्ह है।

वाचकपदकी अपेक्षाकृत प्राचीनता होने पर भी कल्पसूत्रकी समय समय पर परिवर्धित स्थविरावलीमें थेर और खमासमणपदका ही निर्देश नजर आता है, यह भी दोनों स्थविर और स्थविरावलीकी विशेषता एवं भिन्नताके विचारका साधन है।

यहाँ पर प्रसंगोपात्त एक बात स्पष्ट करना उचित है कि—भद्रेश्वरसूरिकी कहावलीमें एक गाथा निम्नप्रकारकी नज़र आती है—

वाई य खमासमणे दिवायरे वायगे ति एगट्ठा। पुव्वगयं जस्सेसं जिणागमे तम्मिमे नामा॥

अर्थात्—वादी, क्षमाश्रमण, दिवाकर और वाचक, ये एकार्थक-समानार्थक शब्द हैं। जिनागममें जो पूर्वगत शास्त्र हैं उनके शेष अर्थात् अंशोंका पारम्परिक ज्ञान जिनके पास है उनके लिये ये पद हैं।

इस गाथासे यह स्पष्ट है कि—इन उपाधियोंवाले आचार्योंके पास पूर्वगतज्ञानकी परंपरा थी। किन्तु आज जैन परम्परामें जो ऐसी मान्यता प्रचलित है कि—इन पदधारक आचार्योंको एक पूर्व-आदिका ज्ञान था, यह मान्यता भ्रान्त एवं गलत प्रतीत होती है। कारण यह है कि—अगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचाराङ्गादि प्राथमिक अंगआगम शीर्णविशीर्ण हो चूके थे, इस दशामें पूर्वश्रुतके अखंड रहनेकी संभावना ही कैसे हो सकती है ?।

स्थविर श्री देववाचककी नन्दीसूत्रके सिवा दूसरी कोई कृति उपलब्ध नहीं है।

चूर्णिकार

नन्दीसूत्रचूर्णिके प्रणेता आचार्य श्री जिनदासगणि महत्तर हैं। सामान्यतया आज यह मान्यता प्रचलित है कि जैन आगमोंके भाष्योंके प्रणेता श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण और चूर्णियोंके रचयिता श्री जिनदासगणि महत्तर ही हैं, और ऐसे प्राचीन उल्लेख पट्टावली आदिमें पाये भी जाते हैं; किन्तु भाष्य-चूर्णियोंके अवगाहनके बाद ये दोनों मान्यताएँ गलत प्रतीत हुई हैं। यहाँ पर भाष्यकारोंका विचार अप्रस्तुत है, अतः सिर्फ यहाँ पर जैन आगमोंके ऊपर जो प्राचीन चूर्णियाँ उपलब्ध हैं उन्हींके विषयमें विचार किया जाता है। आज जैन आगमोंके ऊपर जो चूर्णिनामक प्राकृतभाषा-प्रधान व्याख्याग्रन्थ प्राप्त हैं उनके नाम क्रमशः ये हैं —

१ आचाराङ्गचूर्णि, २ सूत्रकृताङ्गचूर्णि, ३ भगवतीचूर्णि, ४ जीवाभिगमचूर्णि, ५ प्रज्ञापनासूत्र-शरीरपदचूर्णि, ६ जम्बूद्वीपकरणचूर्णि, ७ दशाकल्पचूर्णि, ८ कल्पचूर्णि, ९ कल्पविशेषचूर्णि, १० व्यवहारसूत्रचूर्णि, ११ निशीथसूत्रविशेषचूर्णि, १२ पञ्चकल्पचूर्णि, १३ जीतकल्पबृहच्चूर्णि, १४ आवश्यकचूर्णि, १५ दशकालिकचूर्णि श्रीअगस्त्यसिंहकृता, १६ दशकालिकचूर्णि वृद्धविवरणाख्या, १७ उत्तराध्ययनचूर्णि, १८ नन्दीसूत्रचूर्णि, १९ अनुयोगद्वारचूर्णि, २० पाक्षिकचूर्णि।

ऊपर जिन बीस चूर्णियोंके नाम दिये हैं उनके और इनके प्रणेताओंके विषयमें विचार करनेके पूर्व एतद्विषयक चूर्णिग्रन्थोंके प्राप्त उल्लेखोंको मैं एक साथ यहाँ उद्धृत कर देता हूँ जो भविष्यमें विद्वानोंके लिये कायमकी विचारसामग्री बनी रहें।

(१) आचाराङ्गचूर्णि। अन्तः —

से हु निरालंबणमप्पतिट्ठितो। शेषं तदेव॥ इति आचारचूर्णि परिसमाप्ता॥ नमो सुयदेवयाए भगवईए॥ ग्रन्थाग्रम् ८३००॥

(२) सूत्रकृताङ्गचूर्णि। अन्तः —

सद्दहामि जध सूत्रेति णेतव्वं सव्वमिति॥ नमः सर्वविदे वीराय विगतमोहाय॥ समाप्तं चेदं सूत्रकृताभिधं द्वितीयमङ्गमिति। भद्रं भवतु श्रीजिनशासनाय। सुगडांगचूर्णिः समाप्ता॥ ग्रन्थाग्रम् ९५००॥

(३) भगवतीचूर्णि —

श्रीभगवतीचूर्णिः परिसमाप्तेति॥ इति भद्रं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुअदेवयं तु वंदे जीइ पसाएण सिक्खियं नाणं । बिइयं पि बतव (? बंभ) देविं पसन्नवाणिं पणिवयामि ॥ ग्रंथाग्रं ६७०७ ॥ श्री ॥

(४) जीवाभिगमचूर्णि —

इस चूर्णिकी प्रति अद्यावधि ज्ञात किसी भंडारमें देखनेमें नहीं आई है ।

(५) प्रज्ञापनाशरीरपदचूर्णि । अन्तः —

जमिहं समयविरुद्धं बद्धं बुद्धिविकलेण होज्जा हि । तं जिणवयणविहन्नू खमिऊणं मे पसोहिंतु ॥१॥

॥ सरीरपदस्स चुण्णी जिणभद्दखमासमणकित्तिया समत्ता ॥ अनुयोगद्वारचूर्णि पत्र ७४ ।

याकिनी महत्तरासूनु आचार्य श्री हरिभद्रसूरिकृत अनुयोगद्वारलघुवृत्ति पत्र ९९ में भी यही उल्लेख है ।

(६) जम्बूद्वीपकरणचूर्णि । अन्तः —

एवं उवरिल्लभागस्स तेरासियं पउंजियव्वं । विरुव्वेहवुड्ढीओ आणेयव्वाओ ॥ जंबुद्दीवपण्णत्ति-करणाणं चुण्णी समत्ता ॥

(७) दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि । अन्तः —

जाव णया वि । जाव करणओ — सव्वेसिं पि णयाणं० गाथा ॥ दशानां चूर्णि समाप्ता ॥

(८) कल्पचूर्णि —

आउयवज्जा उ० गाहा ९९ । वित्थरेण जहा विसेसावस्सगभासे । 'सामित्तं चेव पगडीणं को केवत्तियं बंधइ ? खवेइ वा केत्तियं को उ ? त्ति जहा कम्मपगडीए । एतं पसंगेण गतं ।

अन्तः —

तओ य आराहणातो छिण्णसंसारी भवति संसारसंततिं छेत्तुं मोक्खं पावतीति ॥ कल्पचूर्णि समाप्ता ॥ ग्रन्थाग्रम् – ५३०० प्रत्यक्षरगणनया निर्णीतम् ॥ [सर्वग्रन्थाग्रम् – १४७८४] ॥

(९) कल्पविशेषचूर्णि – अन्तः —

कप्पविसेसचुण्णी समत्तेति ॥

(१०) व्यवहारचूर्णि । अन्तः —

व्यवहारस्य भगवतः अर्थविवक्षाप्रवर्त्तने दक्षम् । विवरणमिदं समाप्तं श्रमणगणानाममृतभूतम् ॥१॥

(११) निशीथविशेषचूर्णि । आदिः —

नमिऊणऽरहंताणं, सिद्धाण य कम्मचक्कमुक्काणं । सयणसिणेहविमुक्काण सव्वसाहूण भावेण ॥१॥
सविसेसायरजुत्तं काउ पणामं च अत्थदायिस्स । पज्जुण्णखमासमणस्स चरण-करणाणुपालस्स ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं कयप्पणामो पकप्पणामस्स विवरणं वन्ने । पुव्वायरियकयं चिय अहं पि तं चेव उ विसेसे ॥३॥
भणिया विमुत्तिचूला अहुणाऽवसरो णिसीहचूलाए। को संबंधो तिस्सा ? भण्णइ, इणमो निसामेहि ॥४॥
तेरहवें उद्देशके अन्तमें —
संकेरजडमउडविभूसणस्स तण्णामसरिसणामस्स । तस्स सुतेणेस कता विसेसचुण्णी णिसीहस्स ॥
पंद्रहवें उद्देशके अन्तमें —
रविकरमभिधाणक्खरसत्तमवग्गंतअक्खरजुएणं । णामं जस्सित्थीए सुतेण तिस्से कया चुण्णी ॥
सोलहवें उद्देशके अन्तमें —
देहडो सीह थोरा य ततो जेट्ठा सहोयरा । कणिट्ठा देउलो णण्णो सत्तमो य तिइज्जिओ ।
एतेसिं मज्झिमो जो उ मंदेवी (मंदधी) तेण वित्तिता (चिन्तिता) ॥

अन्तः —

जो गाहासुत्तत्थो चेवंविधपागडो फुडपदत्थो । रइओ परिभासाए साहूण अणुग्गहट्ठाए ॥१॥
ति-चउ-पण ऽट्ठमवग्गे ति-पण-ति-तिगक्खरा ठवे तेसिं । पढम-ततिएहिं णिट्ठइ सरजुएहिं णामं कयं जस्स॥२॥
गुरुदिण्णं च गणित्तं महत्तरत्तं च तस्स तुट्ठेण । तेण कतेसा चुण्णी विसेसणामा णिसीहस्स ॥३॥
णमो सुयदेवयाए भगवतीए ॥ जिणदासगणिमहत्तरेण रइया णिसीहचुण्णी समत्ता ॥

(१२) पञ्चकल्पचूर्णि । अन्तः —

कप्पपणयस्स भेओ परूविओ मोक्खसाहणट्ठाए । जं चरिऊण सुविहिया करेंति दुक्खक्खयं धीरा ॥
पञ्चकल्पचूर्णिः समाप्ता ॥ ग्रन्थप्रमाणं सहस्रत्रयं शतमेकं पञ्चविंशत्युत्तरम् ३१२५ ॥

(१३) जीतकल्पबृहच्चूर्णि । अन्तः —

इति जेण जीयदाणं साहूणऽज्यारपंकपरिसुद्धिकरं। गाहाहिं फुडं रइयं महुरपयत्थाहिं पावणं परमहियं ॥१॥
जिणभद्दखमासमणं निच्छियसुत्तऽत्थदायगामलचरणं। तमहं वंदे पयओ परमं परमोवगार कारिणं महग्घं॥२॥

॥ जीतकल्पचूर्णिः समाप्ता । सिद्धसेनकृतिरेषा ॥

(१४) आवश्यकचूर्णि । अन्तः —

करणनयो – सव्वेसिं पि नयाणं० गाधा ॥ इति आवस्सगनिज्जुत्तिचूण्णी समाप्ता ॥
मंगलं महाश्रीः ॥

---

१. इस गाथासे ज्ञात होता है कि चूर्णिकार श्री जिनदासगणि महत्तरके पिताका नाम नाग अथवा तो चन्द्र होगा ।

२. इस गाथाके अर्थका विचार करनेसे चूर्णिकार श्री जिनदासगणि महत्तरकी माताका नाम प्राकृत गोवा संस्कृत गोपा अधिक संभवित है ।

३. इस गाथामें उल्लिखित देहड आदि चूर्णिकार श्री जिनदासगणि महत्तरके सहोदर भाई हैं ।

४. इस चूर्णि पर टिप्पन रचनेवाले श्री श्रीचंद्रसूरिजी प्रस्तुतचूर्णिका बृहच्चूर्णिके नामसे उल्लेख करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१५) दशकालिकसूत्रअगस्त्यसिंहचूर्णि । अन्तः —

एवमेतं धम्मसमुक्कित्तणादिचरण–करणाणेगपरूवणागब्भं नेव्वाणगमणफलावसाणं भवियजणाणंदिकरं चुण्णिसमासवयणेण दसकालियं परिसमत्तं ॥

नमः॥ वीरवरस्स भगवतो तित्थे कोडीगणे सुविपुलम्मि । गुणगणवइराभस्सा वैरसामिस्स साहाए ॥१॥ महरिसिसरिससभावा भावाऽभावाण मुणितपरमत्था। रिसिगुत्तखमासमणा खमा समाणं निधी आसि ॥२॥ तेसिं सीसेण इमा कलसभवमइंदणामधेज्जेणं । दसकालियस्स चुण्णी पयाण रयणातो उवणत्था ॥३॥ रुयिरपद-संधिणियता छइयपुणरुत्तवित्थरपसंगा । वक्खाणमंतरेणावि सिस्समतिबोधणसमत्था ॥४॥ ससमय-परसमयणयाण जं थ ण समाधितं पमादेणं । तं खमह पसाहेह य इय विण्णत्ती पवयणीणं ॥५॥

॥ दसकालियचुण्णी परिसमत्ता ॥

(१६) दशकालिकसूत्रचूर्णि वृद्धविवरणाख्या । अन्तः —

अज्झयणाणंतरं 'कालगओ समाधीए' जीवणकालो जस्स गतो समाहीए त्ति । जहा तेण एत्तिएण चेव ..... आराहगा भवंति त्ति ॥ दशवैकालिकचूर्णि सम्मत्ता ॥ ग्रन्थाग्रन्थ ७४०० ॥

(१७) उत्तराध्ययनचूर्णि । अन्तः —

वाणिजकुलसंभूतो कोडियगणितो य वज्जसाहीतो। गोवालियमहत्तरओ विक्खातो आसि लोगम्मि ॥१॥ ससमय-परसमयविऊ ओयस्सी देहियं सुगंभीरो । सीसगणसंपरिवुडो वक्खाणरतिप्पियो आसी ॥२॥ तेसिं सीसेण इमं उत्तरझयणाण चुण्णिखंडं तु । रइयं अणुग्गहत्थं सीसाणं मंदबुद्धीणं ॥३॥ जं एत्थं उत्सुत्तं अयाणमाणेण विरतितं होज्जा । तं अणुओगधरा मे अणुचिंतेउं समारेंतु ॥४॥

॥ षट्त्रिंशोत्तराध्ययनचूर्णी समाप्ता ॥ ग्रन्थाग्रं प्रत्यक्षरगणनया ५८५० ॥

(१८) नन्दीसूत्रचूर्णि । अन्तः —

णि रे ण ग म त्त ण ह स दा जि या (?) पसुपतिसंखगजट्ठिताकुला ।
कमट्ठिता धीमतचिंतियक्खरा फुडं कहेयंतऽभिधाण कत्तुणो ॥१॥

शकराज्ञो पञ्चसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेषु अष्टनवतेषु नन्द्यध्ययनचूर्णिः समाप्ता इति ॥ ग्रंथाग्रम् १५००॥

(१९) अनुयोगद्वारसूत्रचूर्णि । अन्तः —

चरणमेव गुणो चरणगुणो । अहवा चरणं चारित्रम्, गुणा खमादिया अणेगविधा, तेसु जो जहट्ठिओ साधू सो सव्वणयसम्मतो भवतीति ॥

॥ कृतिः श्रीश्वेताम्बराचार्यश्रीजिनदासगणिमहत्तरपूज्यपादानामनुयोगद्वाराणां चूर्णिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२०) पाक्षिकसूत्रचूर्णि । अन्तः —

अनुष्टुप्भेदेन छंदसां ग्रंथाग्रं चत्वारि शतानि ४०० ॥
पाक्षिकप्रतिक्रमणचूर्णी समाप्तेति ॥ शुभं भवतु सकलसंघस्य मंगलं महाश्रीः ॥

१. ऊपर जिन बीस चूर्णियोंके आदि–अन्तादि अंशोंके उल्लेख दिये हैं, इनके अवलोकनसे प्रतीत होता है कि–प्रज्ञापनासूत्रके बारहवें शरीरपदकी चूर्णि श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणकृत है। आज इसकी कोई स्वतन्त्र हस्तप्रति ज्ञानभंडारोंमें उपलब्ध नहीं है, किन्तु श्री जिनदासगणि महत्तर और आचार्य श्री हरिभद्रसूरिने क्रमशः अपनी अनुयोगद्वारसूत्रकी चूर्णि और लघुवृत्तिमें इस चूर्णिको समग्र भावसे उद्धृत कर दी है, इससे इसका पता चलता है। श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणने प्रज्ञापनासूत्र पर सम्पूर्ण चूर्णि की हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता है। इसका कारण यह है कि–प्राचीन जैन ज्ञानभंडारोंमें प्रज्ञापनासूत्रचूर्णिकी कोई हाथपोथी नहीं हैं। दूसरा यह भी कारण है कि–आचार्य श्री मलयगिरिने अपनी प्रज्ञापनावृत्तिमें सिर्फ शरीरपदकी वृत्तिके सिवा और कहीं भी चूर्णिपाठका उल्लेख नहीं किया है। अतः ज्ञात होता है कि श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणने सिर्फ प्रज्ञापनसूत्रके बारहवें शरीरपद पर ही चूर्णि की होगी। आचार्य मलयगिरिने अपनी वृत्तिमें इस चूर्णिका छः स्थानों पर उल्लेख किया है।

२. नन्दीसूत्रचूर्णि, अनुयोगद्वारचूर्णि और निशीथसूत्रचूर्णिके प्रणेता श्री जिनदासगणि महत्तर हैं जो इन चूर्णियोंके अन्तिम उल्लेखसे निर्विवाद रूपसे ज्ञात होता है। निशीथचूर्णिके प्रारम्भमें आपने अपने विद्यागुरुका शुभ नाम श्री प्रद्युम्न क्षमाश्रमण बतलाया है। संभव है कि आपके दीक्षागुरु भी ये ही हों। इन चूर्णियोंकी रचना जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणके बादकी है। इसका कारण यह है कि–नन्दीचूर्णिमें चूर्णिकारने केवलज्ञान–केवलदर्शनविषयक युगपदुपयोग–एकोपयोग–क्रमोपयोगकी चर्चा की है एवं स्थान स्थान पर जिनभद्रगणिके विशेषावश्यक भाष्यकी गाथाओंका उल्लेख भी किया है। अनुयोगद्वारचूर्णिमें तो आपने श्री जिनभद्रगणिकी शरीरपदचूर्णिको साद्यन्त उद्धृत कर दी है। अतः ये तीनों रचनायें श्री जिनभद्रगणिके बादकी ही निर्विवाद सिद्ध हैं।

३. दशवैकालिकचूर्णिके कर्त्ता श्री अगस्त्यसिंहगणी हैं। ये आचार्य कौटिकगणान्तर्गत श्री वज्रस्वामीकी शाखामें हुए श्री ऋषिगुप्त क्षमाश्रमणके शिष्य हैं। इन दोनों गुरु-शिष्योंके नाम शाखान्तरवर्त्ति होनेके कारण पट्टावलियोंमें पाये नहीं जाते हैं। कल्पसूत्रकी पट्टावलीमें जो श्री ऋषिगुप्तका नाम है वे स्थविर आर्यसुहस्तिके शिष्य होनेके कारण एवं खुद वज्रस्वामीसे भी पूर्ववर्त्ती होनेसे श्री अगस्त्यसिंहगणिके गुरु ऋषिगुप्तसे भिन्न हैं। कल्पसूत्रकी स्थविरावलीका उल्लेख इस प्रकार है —

थेरस्स णं अज्जसुहत्थिस्स वासिट्ठसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया होत्था। तं जहा —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थेरे य अज्जरोहण १जसभद्दे २ मेहगणी ३ य कामिड्ढी ४ ।
सुट्ठिय ५ सुप्पडिबुद्धे ६ रक्खिय ७ तह रोहगुत्ते ८ य ॥१॥
इसिगुत्ते ९ सिरिगुत्ते १० गणी य बंभे ११ गणी य तह सोमे १२ ।
दस दा य गणहरा खलु एए सीसा सुहत्थिस्स ॥२॥

स्थविर आर्यसुहस्ति श्री वज्रस्वामीसे पूर्ववर्त्ती होनेसे ये ऋषिगुप्त स्थविर दशकालिकचूर्णिप्रणेता श्री अगस्त्यसिंहके गुरु श्री ऋषिगुप्त क्षमाश्रमणसे भिन्न हैं, यह स्पष्ट है । आवश्यकचूर्णि, जिसके प्रणेताके नामका कोई पता नहीं है, उसमें तपसंयमके वर्णनप्रसंगमें आवश्यकचूर्णिकारने इस प्रकार दशवैकालिकचूर्णिका उल्लेख किया है —

तवो दुविहो — बज्झो अब्भंतरो य । जधा दसवेतालियचुण्णीए चाउलोदणंतं (? चालणेदाणंतं) अलुद्धेणं णिज्जरट्ठं साधूसु पडिवायणीयं ८ । [आवश्यक्वचूर्णि विभाग २ पत्र ११७]

आवश्यकचूर्णिके इस उद्धरणमें दशवैकालिकचूर्णिका नाम नज़र आता है । दशवैकालिकसूत्रके ऊपर दो चूर्णियाँ आज प्राप्त हैं — एक स्थविर अगस्त्यसिंहप्रणीत और दूसरी जो आगमोद्धारक श्री सागरानन्दसूरि महाराजने रतलामकी श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वेतांबर संस्थाकी ओरसे सम्पादित की है, जिसके कर्त्ताके नामका पता नहीं मिला है और जिसके अनेक उद्धरण याकिनीमहत्तरासूनु आचार्य श्री हरिभद्रसूरिने अपनी दशवैकालिकसूत्रकी शिष्यहितावृत्तिमें स्थान स्थान पर वृद्धविवरणके नामसे दिये हैं । इन दो चूर्णियोंमेंसे आवश्यकचूर्णिकारको कौनसी चूर्णि अभिप्रेत है, यह एक कठिन-सी समस्या है । फिर भी आवश्यकचूर्णिके ऊपर उल्लिखित उद्धरणको गौरसे देखनेसे हम निर्णयके समीप पहुँच सकते हैं । इस उद्धरणमें "चाउलोदणंतं" यह पाठ गलत हो गया है । वास्तवमें "चाउलोदणंतं" के स्थानमें मूलपाठ "चालणेदाणंतं" ऐसा होगा । परन्तु मूलस्थानको बिना देखे ऐसे पाठोंके मूल आशयका पता न चलने पर केवल शाब्दिक शुद्धि करके संख्याबन्ध पाठोंको विद्वानोंके गलत बनानेके संख्याबन्ध उदाहरण मेरे सामने हैं । दशवैकालिकसूत्रकी प्राप्त दोनों चूर्णियोंको मैंने बराबर देखी हैं, किन्तु "**चाउलोदणंतं**" का कोई उल्लेख उनमें नहीं पाया है और इसका कोई सार्थक सम्बन्ध भी नहीं है । दशवैकालिकसूत्रकी अगस्त्यसिंहीया चूर्णिमें तपके निरूपणकी समाप्तिके बाद "**चालणेदाणिं**" [पत्र १९] ऐसा चूर्णिकारने लिखा है, जिसको आवश्यकचूर्णिकारने "**चालणेदाणंतं**" वाक्य द्वारा सूचित किया है । इस पाठको बादके विद्वानोंने मूल स्थानस्थित पाठको बिना देखे गलत शाब्दिक सुधारा कर बिगाड दिया—ऐसा निश्चितरूपसे प्रतीत होता है । अतः मैं इस निर्णय पर आया हूँ कि — आवश्यकचूर्णिकारनिर्दिष्ट दशवैकालिकचूर्णि अगस्त्यसिंहीया चूर्णि ही है । और इसी कारण अगस्त्यसिंहीया चूर्णि आवश्यकचूर्णिके पूर्वकी रचना है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री हरिभद्रसूरिने अपनी शिष्यहितावृत्तिमें इस चूर्णिका खास तौरसे निर्देश नहीं किया है। सिर्फ रइवक्का सं० रतिवाक्या नामक दशवैकालिकसूत्रकी प्रथम चूलिकाकी व्याख्यामें [पत्र २७३-२] "अन्ये तु व्याचक्षते" ऐसा निर्देश करके अगस्त्यसिंहीया चूर्णिका मतान्तर दिया है। इसके सिवा कहीं पर भी इस चूर्णिके नामका उल्लेख नहीं किया है।

इस अगस्त्यसिंहीया चूर्णिमें तत्कालवर्त्ती संख्याबन्ध वाचनान्तर—पाठभेद, अर्थभेद एवं सूत्र-पाठोंकी कमी—बेशीके काफी निर्देश हैं, जो अतिमहत्त्वके हैं।

यहाँ पर ध्यान देने जैसी एक बात यह है कि—दोनों चूर्णिकारोंने अपनी चूर्णीमें दशवैकालिक-सूत्रकी एक प्राचीन चूर्णी या वृत्तिका समान रूपसे उल्लेख रइवक्काचूलिकाकी चूर्णीमें किया है, जो इस प्रकार है—

"एत्थ इमातो वृत्तिगतातो पदुद्देसमेत्तगाधाओ। जहा—

दुक्खं च दुस्समाए जीविउं जे १ लहुसगा पुणो कामा २।
सातिबहुला मणुस्सा ३ अचिरट्ठाणं चिमं दुक्खं ४ ॥ १ ॥
ओमजणम्मि य खिंसा ५ बंतं च पुणो निसेवियं भवति ६।
अहरोवसंपया वि य ७ दुलभो धम्मो गिहे गिहिणो ८ ॥ २ ॥
निवयंति परिकिलेसा ९ बंधो ११ सावज्जजोग गिहिवासो १३।
एते तिण्णि वि दोसा न होंति अणगारवासम्मि १०—१२-१४ ॥ ३ ॥
साधारणा य भोगा १५ पत्तेयं पुण्ण—पावफलमेव १६।
जीयमवि माणवाणं कुसग्गजलचंचलमणिचं १७ ॥ ४ ॥
णत्थि य अवेदयित्ता मोक्खो कम्मस्स निच्छओ एसो १८।
पदमट्ठारसमेतं वीरवयणसासणे भणितं ॥ ५ ॥"

अगस्त्यसिंहीया चूर्णी

दूसरी मुद्रित चूर्णीमें [पत्र ३५८] "एत्थ इमाओ वृत्तिगाधाओ। उक्तं च" ऐसा लिखकर ऊपर दी हुई गाथायें उद्धृत कर दी हैं।

इन उल्लेखोंसे यह निर्विवाद है कि—दशवैकालिकसूत्रके ऊपर इन दो चूर्णियोंसे पूर्ववर्ती एक प्राचीन चूर्णी भी थी, जिसका दोनों चूर्णिकारोंने वृत्ति नामसे उल्लेख किया है। चूर्णीको 'वृत्ति' कहनेका प्रघात प्राचीन है। इसमें यह भी कहा जा सकता है कि—आगमोंके ऊपर पद्य और गद्यमें व्याख्याग्रन्थ लिखनेकी प्रणालि अधिक पुराणी है। और इससे हिमवंतस्थविरावलीमें उल्लिखित निम्न उल्लेख सत्यके समीप पहुँचता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"तेषामार्यसिंहानां स्थविराणां मधुमित्रा-ऽऽर्यस्कन्दिलाचार्यनामानौ द्वौ शिष्यावभूताम्। आर्यमधुमित्राणां शिष्या आर्यगन्धहस्तिनोऽतीवविद्वांसः प्रभावकाश्चाभवन्। तैश्च पूर्वधरस्थविरोत्तंसोमास्वातिवाचकरचिततत्त्वार्थोपरि अशीतिसहस्रश्लोकप्रमाणं महाभाष्यं रचितम्। एकादशाङ्गोपरि चाऽऽर्यस्कन्दिलस्थविराणामुपरोधतस्तैर्विवरणानि रचितानि। यदुक्तं तद्रचिताऽऽचाराङ्गविवरणान्ते यथा—

थेरस्स महुमित्तस्स सेहेहिं तिपुव्वनाणजुत्तेहिं। मुणिगणविवंदिएहिं ववगयरायाइदोसेहिं ॥१॥
बंभद्दीवियसाहामउडेहिं गंधहत्थिविबुहेहिं। विवरणमेयं रइयं दोसयवासेसु विक्कमओ ॥२॥

आचाराङ्गसूत्रके इस गंधहस्तिविवरणका उल्लेख आचार्य श्री शीलाङ्कने अपनी आचाराङ्गवृत्तिके उपोद्घातमें भी किया है। कुछ भी हो; जैन आगमोंके ऊपर व्याख्या लिखनेकी प्रणाली अधिक प्राचीन है।

४. उत्तराध्ययनसूत्रचूर्णिके प्रणेता कौटिकगणीय, वज्रशाखीय एवं वाणिजकुलीय स्थविर गोपालिक महत्तरके शिष्य थे। इस चूर्णिकारने चूर्णिमें अपने नामका निर्देश नहीं किया है। इनके निश्चित समयका पता लगाना मुश्किल है। तथापि इस चूर्णिमें विशेषावश्यकभाष्यकी स्वोपज्ञ टीकाका सन्दर्भ उल्लिखित होनेके कारण इसकी रचना जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणके स्वर्गवासके बादकी है। विशेषावश्यक भाष्यकी स्वोपज्ञ टीका श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणकी अन्तिम रचना है। छठे गणधरवाद तक इस टीकाका निर्माण होने पर आपका देहान्त हो जानेके कारण बादके समग्र ग्रंथकी टीकाको श्रीकोट्टार्यवादी गणी महत्तरने पूर्ण की है।

५. जीतकल्पबृहच्चूर्णिके प्रणेता श्रीसिद्धसेनगणी हैं। इस चूर्णीके अन्तमें आपने सिर्फ अपने नामके अतिरिक्त और कोई उल्लेख नहीं किया है। श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणकृत ग्रन्थके ऊपर यह चूर्णी होनेके कारण इसकी रचना श्रीजिनभद्रगणिके बादकी स्वयंसिद्ध है। इस चूर्णीको टिप्पनककार श्रीश्रीचन्द्रसूरिने बृहच्चूर्णीनामसे दर्शाई है —

नत्वा श्रीमन्महावीरं परोपकृतिहेतवे। जीतकल्पबृहच्चूर्णेर्व्याख्या काचित्प्रकाश्यते ॥१॥

उपरिनिर्दिष्ट सात चूर्णीयोंके अतिरिक्त तेरह चूर्णीयोंके रचयिताके नामका पता नहीं मिलता है। तथापि इन चूर्णीयोंके अवलोकनसे जो हकीकत ध्यानमें आई है इसका यहाँ उल्लेख कर देता हूँ।

यद्यपि आचाराङ्गचूर्णी और सूत्रकृताङ्गचूर्णीके रचयिताओंके नामका पता नहीं मिला है तो भी आचाराङ्गचूर्णीमें चूर्णीकारने पंद्रह स्थान पर नागार्जुनीय वाचनाका उल्लेख किया है, उनमेंसे सात स्थान पर "भदंतनागज्जुणिया" इस प्रकार बहुमानदर्शक 'भदन्त' शब्दका प्रयोग किया है, इससे अनुमान होता है कि ये चूर्णीकार नागार्जुनसन्तानीय कोई स्थविर होने चाहिए। सूत्रकृताङ्गचूर्णीमें जहाँ जहाँ नागार्जुनीय वाचनाका उल्लेख चूर्णीकारने किया है वहाँ सामान्यतया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागज्जुणिया इतना ही लिखा है। अतः ये दोनों चूर्णीकार अलग अलग ज्ञात होते हैं। सूत्रकृताङ्गचूर्णीमें जिनभद्रगणीके विशेषावश्यकभाष्यकी गाथाओं एवं स्वोपज्ञ टीकाके सन्दर्भ अनेक स्थान पर उद्धृत किये गये हैं, इससे इस चूर्णीकी रचना श्रीजिनभद्रगणिके बादकी है। परन्तु आचाराङ्गचूर्णीमें जिनभद्रगणिके कोई ग्रन्थका उल्लेख नहीं है, इस कारण इस चूर्णीकी रचना श्रीजिनभद्रगणिके पूर्वकी होनेका सम्भव अधिक है।

भगवतीसूत्रचूर्णीमें श्रीजिनभद्रगणीके विशेषणवतीग्रन्थकी गाथाओंके उद्धरण होनेसे, और कल्पचूर्णीमें साक्षात् विसेसावस्सगभासका नाम उल्लिखित होनेसे इन दोनों चूर्णीयोंकी रचना निश्चित रूपसे श्रीजिनभद्रगणिके बादकी है।

दशासूत्रचूर्णीमें केवलज्ञान-केवलदर्शनविषयक युगपदुपयोगादिवादका निर्देश होनेसे यह चूर्णी भी श्रीजिनभद्रगणीके बादकी है।

आवश्यकचूर्णीके प्रणेताका नाम चूर्णीकी कोई प्रतिमें प्राप्त नहीं है। श्रीसागरानन्दसूरि महाराजने अपने सम्पादनमें इसको जिनदासगणिमहत्तरकृत बतलाई है। प्रतीत होता है कि — आपका यह निर्देश श्रीधर्मसागरोपाध्यायकृत तपागच्छीय पट्टावलीके उल्लेखको देख कर है, किन्तु वास्तवमें यह सत्य नहीं है। अगर इसके प्रणेता जिनदासगणि होते तो आप इस प्रासादभूत महती चूर्णीमें जिनभद्रगणीके नामका या विशेषावश्यकभाष्यकी गाथाओंका जरूर उल्लेख करते। मुझे तो यही प्रतीत होता है कि—इस चूर्णीकी रचना जिनभद्रगणिके पूर्वकी और नन्दीसूत्ररचनाके बादकी है। दशवैकालिकचूर्णी (वृद्धविवरण) में और व्यवहारचूर्णीमें श्रीजिनभद्रगणिकी कोई कृतिका उद्धरण नहीं है, अतः ये चूर्णीयाँ भी जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणके पूर्वकी होनी चाहीए। जम्बूद्वीपकरणचूर्णी जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिकी चूर्णी मानी जाती है, किन्तु वास्तवमें यह जम्बूद्वीपके परिधि-जीवा-धनुःपृष्ठ आदि आठ प्रकारके गणितको स्पष्ट करनेवाले किसी प्रकरणकी चूर्णी है। वर्त्तमान इस चूर्णीमें मूल प्रकरणकी गाथाओंके प्रतीक मात्र चूर्णीकारने दिये हैं, अतः कुछ गाथाओंका पता जिनभद्रीय बृहत्क्षेत्रसमासप्रकरणसे लगा है, किन्तु कितनीक गाथाओंका पता नहीं चला है? इस चूर्णीमें जिनभद्रीय बृहत्क्षेत्रसमासकी गाथायें भी उद्धृत नज़र आती हैं, अतः यह चूर्णी उनके बादकी है।

यहां पर चूर्णीयोंके विविध उल्लेखोंको लक्ष्यमें रख कर चूर्णीकारोंके विषयमें जो कुछ निवेदन करनेका था, वह करनेके बाद अंतमें यह लिखना प्राप्त है कि—प्रकाश्यमान इस नन्दीसूत्रचूर्णीके

---

१. "श्रीवीरात् १०५५ वि. ५८५ वर्षे याकिनीसूनुः श्रीहरिभद्रसूरिः स्वर्गभाक्। निशीथ-बृहत्कल्पभाष्याऽऽवश्यकादिचूर्णिकाराः श्रीजिनदासमहत्तरादयः पूर्वगतश्रुतधरश्रीप्रद्युम्नक्षमणादिशिष्यत्वेन श्रीहरिभद्रसूरितः प्राचीना एव यथाकालभाविनो बोध्याः। ११११५ श्रीजिनभद्रगणिर्युगप्रधानः। अयं च जिनभद्रीयध्यानशतककाराद्भिन्नः सम्भाव्यते।" इण्डियन एण्टीक्वेरी पु. ११. पृ. २५३॥

[सिरिदेववायगविरइयं "नंदीसुत्तं" मेंसे उद्धृत.]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणेता श्रीजिनदासगणिमहत्तर हैं, जिसका रचनासमय स्पष्टतया प्राप्त नहीं है, फिर भी आज नन्दीसूत्रचूर्णीकी जो प्रतियाँ प्राप्त हैं, उनके अंतमें संवत्का उल्लेख नज़र आता है, जो चूर्णीरचनाका संवत् होनेकी संभावना अधिक है। यह उल्लेख इस प्रकार है—

शकराज्ञः पञ्चसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेषु अष्टनवतेषु नन्द्यध्ययनचूर्णी समाप्ता इति।

अर्थात् शाके ५९८ (वि. सं. ७३३) वर्षमें नन्द्यध्ययनचूर्णी समाप्त हुई। इस उल्लेखको कितनेक विद्वान् प्रतिका लेखसमय मानते हैं, किन्तु यह उल्लेख नन्द्यध्ययनचूर्णीकी समाप्तिका अर्थात् रचनासमाप्तिका ही निर्देश करता है, लेखनकालका नहीं। अगर प्रतिका लेखनकाल होता तो 'समाप्ता' ऐसा न लिखकर 'लिखिता' ऐसा ही लिखा होता। इस प्रकार गद्यसन्दर्भमें रचना-संवत् लिखनेकी प्रथा प्राचीन युगमें थी ही, जिसका उदाहरण आचार्य श्रीशीलाङ्ककी आचाराङ्ग-वृत्तिमें प्राप्त है।

सूत्र और चूर्णिकी भाषा

नन्दीसूत्र और उसकी चूर्णीकी भाषाका स्वरूप क्या है? इस विषयमें अभी यहाँ पर अधिक कुछ मैं नहीं लिखता हूँ। सामान्यतया व्यापकरूपसे मुझे इस विषयमें जो कुछ कहना था, मैंने अखिलभारतीय प्राच्यविद्यापरिषत्-श्रीनगरके लिये तैयार किये हुए मेरे "जैन आगमधर और प्राकृत वाङ्मय" नामक निबन्धमें कह दिया है, जो 'श्रीहजारीमल स्मृतिग्रन्थ' में प्रसिद्ध किया गया है, उसको देखनेकी विद्वानोंको सूचना है।

[चूर्णिसहित 'नन्दीसूत्र', प्रस्तावनासे, वाराणसी, १९६६]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org